डॉ0 अम्बेडकर और दलित सशक्तिकरण

डॉ0 (श्रीमती) नीरज
असि0 प्रोफे0 राजनीति विज्ञान विभाग,
वीरांगना अवन्तिबाई लोधी राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कुरावली, मेनपुरी (उ0प्र0)
Email:0205neeraj@gmail.com

सारांश

सशक्तिकरण भारत में चल रहे सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण पहलू बनकर उभरा है। दलित सशक्तिकरण और महिला सशक्तिकरण को स्वयं विचारधारा, भौतिक और ज्ञान संसाधनों पर दलितों द्वारा नियंत्रण प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो एक समाज में शक्ति सम्बन्ध को निर्धारित करती है।

इसी परिप्रेक्ष्य में अम्बेडकर के विचार, कार्य और जीवन संघर्ष एक ठोस आधार तैयार करते हैं, जिसका भारत में जारी दलित प्रक्रिया को वैचारिक रूप से प्रेरित करना और बनाए रखना लगातार जारी है। दलित पहचान की जागरूकता और चेतना पैदा करने के लिए उन्होंने दलितों की शिक्षा और आत्म सम्मान पर उचित जोर दिया। शूद्रों की उत्पत्ति और अस्पृश्यता की उकी व्याख्या दलितों के बीच आत्मसम्मान की भावना उत्पन्न करने में अम्बेडकर बहुत सफल हैं। उन्होंने दलितों को जागरूक करने के लिए अपने विचारों को प्रसारित करने के लिए ''मूकनायक'', ''बहिष्कृत भारत'' और ''जनता'' जैसे अखबार शुरू किए। उन्होंने दलितों को अपने पारम्परिक और अपमानित करने वाले कामकाज को छोड़ने और गाँवों का परित्याग करने के लिए प्रेरित किया। यहाँ भारत की राजनीतिक संरचना में गाँव के स्थान पर अम्बेडकर और गाँधी दोनों के ही विचार भिन्न थे। गाँधी ने ग्राम स्वराज का समर्थन किया जो उनके प्रस्तावित राजनीतिक ढाँचे में केन्द्रीय स्थान लेता है।

दलित सशक्तिकरण के लिए अम्बेड़कर और गाँधी द्वारा अपनाए गए परस्पर विरोधी दृष्टिकोण लम्बे समय तक एक–दूसरे के लिए अनन्य नहीं हैं बल्कि वे एक दूसरे के पूरक है क्योंकि वे एक ही प्रक्रिया के दो अलग–अलग चरणों को दर्शाते हैं।

मुख्य शब्दः *दलित सशक्तिकरण, सामाजिक जागरूकता, राजनीतिक शक्ति, अलगाऊ व समूहित दृष्टिकोण।*

Reference to this paper should be made as follows:

Received: 05.01.2020
Approved: 28.04.2020

डॉ0 (श्रीमती) नीरज

डॉ0 अम्बेडकर और दलित सशक्तिकरण

RJPP 2020,
Vol. XVIII, No. 1,
pp.052-059
Article No. 005

Online available at *:*
https://anubooks.com/?page_id=6391

प्रस्तावना

सशक्तिकरण भारत में चल रहे सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण पहलू बनकर उभरा है। दलित सशक्तिकरण और महिला सशक्तिकरण की भारत में व्यापक अपील और चलन है। अभी तक हाशिए पर पड़े हुए समूहों– वे जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक और सांस्कृतिक रूप से वंचित हैं– का सशक्तिकरण वैश्विक विकास संवाद में भी एक प्रमुख मुद्दा है। वर्तमान संदर्भ में, वैश्विक विकास रणनीति के हिस्से के रूप में सशक्तिकरण का विचार 1990 के दशक में प्रचलन में आया। वैश्वीकरण के मद्देनजर, हाशिए पर पड़े हुए वर्ग को राष्ट्रीय मुख्यधारा में मिलाने के लिए विकास के साथ सशक्तिकरण की रणनीति को अपनाया गया है। विकास साहित्य एक प्रक्रिया तथा एक चलन व रणनीति दोनों के रूप में सशक्तिकरण के विचार की विभिन्न परिभाषाओं और व्याख्याओं से भरा पड़ा है। नैली स्ट्रॉमक्विस्ट के अनुसार, 'सशक्तिकरण अंतर्वैयक्तिक सम्बन्धों और समाज भर के संस्थानों दोनों में शक्ति के वितरण को बदलने की प्रक्रिया है।' जबकि लूसी लैजो इसे 'संसाधनों और साधनों को प्राप्त करने, मुहैया कराने, प्रदान करने या ऐसे साधनों और संसाधनों पर नियंत्रण के लिए उन तक पहुंच का अधिकार देने' के रूप में परिभाषित करती है। विश्व बैंक (2002) सशक्तिकरण को एक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करता है जो 'हाशिए पर पड़े हुए वर्गो के जीवन को प्रभावित करने वाले संसाधनों में सहभागिता के लिए, उनके साथ बातचीत करने के लिए, उनके नियंत्रण को प्रभावित करने के लिए और उन्हें जिम्मेदार ठहराने के लिए उन वर्गो की परिसंपत्तियों और क्षमताओं के विस्तार' का समर्थन करती है।[1]

इस शोध पत्र को प्रस्तुत करने का मेरा यह उद्देश्य है कि डॉ0 भीमराव अम्बेडकर द्वारा दलितों को सशक्त कैसे किया गया था उन्होंने कौन–कौन से प्रयासों के द्वारा दलितों को जागरूक करने का प्रयास किया। इसके साथ ही अम्बेडकर के दलित मिशन और उनके विचारात्मक स्रोतों के आधार पर उनके वैचारिक ढांचे की विशेषताओं का भी अध्ययन किया जायेगा जो कि दलित सशक्तिकरण की प्रक्रिया के लिए प्रासंगिक है।

दलित सशक्तिकरण को स्वयं, विचारधारा, भौतिक और ज्ञान संसाधनों पर दलितों द्वारा नियंत्रण प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो एक समाज में शक्ति सम्बन्ध को निर्धारित करती है। इस प्रकार से, सशक्तिकरण का सिद्धांत अनिवार्य रूप से एक राजनीतिक प्रक्रिया है, जो पराधीनता की प्रचलित शक्ति संरचना को चुनौती देती है। एक राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में, सशक्तिकरण में तीन अहम् तत्त्व शामिल होते हैं– सूचना तक पहुंच, राजनीतिक प्रक्रिया में भागीदारी और समावेशन का अवसर, तथा प्रभावित करने और शक्ति प्राप्त करने के लिए संगठित करने की क्षमता। परिणोन्मुखी आदर्श में, सशक्तिकरण की प्रक्रिया में चार उत्तरोत्तर चरण होते हैं। ये हैं चेतना, लामबंदी, संगठन और नियंत्रण। चेतना का अर्थ है समूह की पहचान और हितों के बारे में जानकारी और जागरूकता। एक जागरूकता समूह और एक निष्क्रिय समूह के बीच वही अंतर है जो अंतर कार्ल मार्क्स 'खुद के लिए क्लास' और 'खुद के भीतर क्लास' के बीच पाते हैं। लामबंदी का अर्थ है एक उद्देश्य प्राप्त करने हेतु आगे आने के लिए इच्छा और

तत्परता उत्पन्न करना। संगठन का अर्थ है एक साझा लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सामूहिक और संवहनीय प्रयास करने हेतु संरचनात्मक ढांचे के भीतर मानव और भौतिक संसाधनों का एकत्रीकरण। नियंत्रण का अर्थ है किसी व्यक्ति के जीवन की परिस्थितियों को प्रभावित करने वाले मामलों पर निर्णय लेने और उन्हें निर्धारित करने के लिए शक्ति और क्षमता प्राप्त करना।

सशक्तिकरण की प्रक्रिया का तत्व विश्लेषण विभिन्न प्रकारों में इसके श्रेणीकरण का कारण बना है जैसे कि मनोवैज्ञानिक सशक्तिकरण, आर्थिक सशक्तिकरण, सामाजिक सशक्तिकरण और राजनीतिक सशक्तिकरण। राज्य– केन्द्रिक लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया में, किसी भी व्यवहार्य सशक्ति रणनीति के लिए राजनीतिक सशक्तिकरण एक अनिवार्य शर्त बन जाता है क्योंकि यह हाशिए पर पड़े हुए किसी भी लक्षित समूह या समुदाय के समग्र सशक्तिकरण के लिए उत्प्रेरक के रूप में साबित हो सकता है। यद्यपि यह अवास्तविक लगता है कि किस तरह आठ दशक पहले स्पष्ट रूप से बताए गए, अम्बेडकर के विचार सशक्तिकरण की समकालीन प्रक्रिया के लिए उपयुक्त है, लेकिन हकीकत के लिए स्पष्ट रूप से बोलने वाले और संघर्ष करने वाले पहले व्यक्ति थे। वे उनकी अग्रणी प्रयासों के ही कारण था कि राजनीतिक प्रक्रिया की मुख्यधारा में दलितों का प्रतिनिधित्व भारत में एक हकीकत बना। यह इसी संदर्भ में है कि आधुनिक भारत के सामाजिक और दलित सुधारकों की भीड़ के बीच अंबेडकर का ओहदा ऊंचा है।[2]

इसी परिप्रेक्ष्य में, अंबेडकर के विचार, कार्य और जीवन संघर्ष एक ठोस आधार तैयार करते हैं, जिसका भारत में जारी दलित प्रक्रिया को वैचारिक रूप से प्रेरित करना और बनाए रखना लगातार जारी है। समानता, स्वतंत्रता ओर मानव गरिमा के सिद्धांतों पर उनका निरंतर जोर हिन्दू समाज के भीतर सामाजिक बदलाव की दूसरी लहर लाने में मददगार साबित हुआ, जो कि भारत में प्रशासनिक और राजनीतिक शक्ति साझा करने के लिए दलित समुदाय को सक्षम बनाने से सम्बन्धित थी। अंबेडकर को भारतीय सामाजिक संरचना में सन्निहित जाति व्यवस्था की दमनकारी और हठी प्रकृति का एहसास हुआ, जो कि गैर–समतावादी सामाजिक और धार्मिक मानकों के लिए पीढ़ियों से चली आ रही थी और इसे तर्क संगत भी ठहराया गया था। इसलिए, वो इस तरीजे पर पहुचे कि जाति व्यवस्था को सुधारा नहीं जा सकता, और इसी कारण के इसका पूर्णतया अंत किया जाना होगा। ये एक बिंदु था जहां उन्होंने जाति व्यवस्था की प्रकृति और सुधार पर गांधी के साथ गंभीर मतभेद विकसित कर लिए थे। इसी अनुभूति के कारण, उन्होंने अपने जीवन के बाद के वर्षो में हिंदू धर्म त्याग दिया और बौद्ध धर्म अपना लिया। यद्यपि वो अपने विचारों और संघर्षो के सुपरिणामों के साक्षी बनने तक जीवित नहीं रहे, लेकिन उनके विचारों और संघर्षों का आजाद भारत में जारी दलित सशक्तिकरण की प्रक्रिया को बनाए रखना और प्रेरित करना बरकरार है।

अब सवाल उठता है कि दलित कौन हैं? और उन्हें दलित क्यों कहा जाता है? 'दलित' एक मराठी शब्द है जिसका मतलब है 'जमीन' या 'टुकड़े कर दिया गया'। 'दलित' शब्द संस्कृत के 'दल' से आता है जिसका अर्थ है 'तोड़ना', 'अलग करना' या टुकड़े करना'। यद्यपि सार्वजनिक

संवाद में दलित शब्द का इस्तेमाल अपेक्षाकृत हाल ही के समय में प्रारम्भ हुआ है, लेकिन ऐसा माना जाता है कि सबसे पहले इस शब्द का इस्तेमाल महाराष्ट्र के अग्रणी समाज सुधारक ज्योतिराव फुले (1827–1890) द्वारा समाज के शोषित वर्गो के उत्थान के कार्य के अपने प्रयास में किया गया था। अंबेडकर ने दलित शब्द को लोकप्रिय नहीं बनाया था लेकिन इसकी लोकप्रियता में उनका दर्शन एक महत्वपूर्ण स्रोत रहा है। हालांकि कुछ ऐसे भी लोग हैं जो लोगों के किसी भी उत्पीड़ित समूह की ओर इशारा करने के लिए इसे व्यापक अर्थ देते हैं। फिर भी यह शब्द अनूसूचित जाति के लोगों का पर्यायवाची बन गया है। भारतीय समाज का यह वर्ग इसलिए दलित कहलाता है क्योंकि उन्हें सामाजिक संरचना के सबसे निचले सोपान पर रखा गया है और वे विभिन्न प्रकार के वंचनों का सामना करते हैं तथा सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से हाशिए पर पड़े हुए हैं। उनके हाशिए पर पड़े होने का सबसे बुरा रूप है। अस्पृश्यता का अभिशाप। इन अक्षमताओं, वचनों और हाशिए पर पड़े रहने को धार्मिक मानदंडो और शास्त्रों को स्वीकृति प्राप्त है। यह आंशिक रूप से इन वंचनों की गहरी जड़ो और सतत प्रकृति को स्पष्ट कर देता है। इस प्रकार से भारतीय संदर्भ में, सामाजिक सुधारों के प्रयास में अनिवार्य रूप से धार्मिक मानदण्डों और प्रथाओं में परिवर्तन शामिल होता है, जिसे प्राप्त करना मुश्किल है। अंबेडकर ने भी इस दुविधा का सामना किया और अंततः, अपने जीवन के अंतिम भाग में उन्होंने हिन्दू धर्म को त्याग कर बौद्ध धर्म को अपना लिया।[3]

अंबेडकर खुद महार जाति में जन्मे थे, जो कि संख्या की दृष्टि से महाराष्ट्र के दलित समुदाय में एक प्रमुख जाति थी। उन्होंने खुद दलित समुदाय के सदस्य से जुड़ी विभिन्न अक्षमताओं ओर वंचनों का अनुभव किया था। वो बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ द्वारा प्रदान की गई छात्रवृत्ति की मदद से कोलंबिया यूनिवर्सिटी से उन्नत शिक्षा पाने में सफल रहे थे। बाद में, अपनी खुद की कड़ी मेहनत से उन्होंने लंदन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स में पढ़ाई की। उनके पश्चिमी अनुभव ने उन्हें अन्य चीजों के साथ–साथ विधि अर्थशास्त्र और विधि का गहरा ज्ञान पाने में सक्षम बनाया। उनके विचारों के स्रोतों के उदार स्वभाव ने उनके वैचारिक सामंजस्य के लिए समस्या खड़ी कर दी थीं, फिर भी दलितों को भारतीय समाज की मुख्यधारा में लाने के उनके जीवन भर के मिशन ने उन्हें विचारात्मक विसंगतियों का समाधान करने हेतु व्यावहारिक व्याख्याएं पेश करने में सक्षम बनाया। उदाहरण के तौर पर, उन्होंने घोषित किया कि दलित समुदाय पूंजीवाद और ब्राह्मणवाद के दो जुड़वा दुश्मनों का सामना करता है और उनके अधिकार हनन का अंत करने के लिए दो प्रकारों के संघर्षों– वर्ग संघर्ष और जाति संघर्ष को शुरू करना होगा। फिर भी वो दोनों संघर्षों के बीच आपसी संबंध प्रमाणित नहीं कर सके। हालांकि व्यावहारिक स्तर पर, दलित आंदोलन में दोनों की आवश्यकता है।[4]

अंबेडकर के दलित मिशन और उनके विचारात्मक स्रोतों के उदार स्वभाव के आधार पर, उनके वैचारिक ढांचे की निम्नलिखित विशेषताएं अभिज्ञात की गई हैं, जो दलित सशक्तिकरण की प्रक्रिया के लिए प्रासंगिक है–

पहली, अंबेडकर को यकीन था कि जाति व्यवस्था और इसका हिन्दू धर्म का आधार दोनों ही न केवल दमनकारी प्रकृति के हैं बल्कि वे सर्वांगी रूप से स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के सिद्धांतों का खंडन करते हैं, जो कि आधुनिक लोकतांत्रिक समाज के तीन मूलभूत आधार हैं। वो फ्रांस की राज्यक्रान्ति के तीन आदर्शों– स्वतंत्रता, समानता और बंधुता द्वारा गहराई से प्रेरित थे। भारत का जाति–ग्रस्त वर्गीकृत सामाजिक संरचना में इन सिद्धांतों का अभाव, एक खंडित समाज को पैदा करता है और उसे बनाए रखना है, जो कि राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए खतरनाक है।

दूसरी, भारतीय जाति व्यवस्था के अंतर्गत, दलितों का अधिकार हनन और वंचन इतना व्यापक और संपूर्ण है कि इस व्यवस्था के वर्तमान रूप के अधीन उनका कोई भविष्य नहीं है।[5]

तीसरी, जाति व्यवस्था की जड़ें इतनी गहरी और मजबूत तथा ब्राह्मणवादी धर्म द्वारा स्वीकृत हैं कि चाहे जितना भी सुधार कर लिया जाए, लेकिन दलितों की दुर्दशा का अंत नहीं होगा। यहां उनके विचार गांधी से अलग थे। इसका एकमात्र समाधान जाति व्यवस्था के सम्पूर्ण अंत में या हिन्दू धर्म के घेरे से बाहर निकलने में निहित है। अंबेडकर के लिए, 'जाति व्यवस्था महज श्रम का विभाजन मात्र नहीं है बल्कि श्रमिकों का भी विभाजन है। ये वह वर्गीकरण है जिसमें श्रमिकों के विभाजन को एक दूसरे के ऊपर श्रेणीकृत किया जाता है। श्रमिकों को यह विभाजन न तो संबद्ध व्यक्ति के प्राकृतिक रूझान पर आधारित है और न ही उसके विकल्प पर। यह इसलिए हानिकारक है क्योंकि इसमें मानव की प्राकृतिक शक्तियों की पराधीनता और सामाजिक शासनों की अनिवार्यता के प्रति झुकाव शामिल होता है।[6]

चौथी, लोकतंत्र का संसदीय प्रकार सर्वोत्तम प्रकार की सरकार होती है, लेकिन लोकतंत्र सामाजिक और आर्थिक समानता की अनुभूति किए बिना सफल नहीं हो सकता। यही कारण है कि वो भारत में सामाजिक लोकतंत्र के प्रमुख प्रतिनिधि थे। एक सच्चे लोकतंत्रवादी की तरह, शांतिपूर्ण तरीकों की व्यावहारिकता में उनका गहरा विश्वास था। यह लोकतांत्रिक आचरण में उनके दृढ़ विश्वास के कारण था कि वो मार्क्स और उनके साम्यवाद के क्रांतिकारी उत्साह से नफरत करते थे। हालांकि, लोकतंत्र की सफलता के लिए, उन्होंने राजनीतिक मुक्ति पर सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन को प्रथमिकता दी।[7]

पांचवीं, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में चार तत्त्व शामिल होते हैं– आंतरिक परिवर्तन (गुलाम का गुलामी से इनकार), सामाजिक संघर्ष, राजनीतिक संवाद और राजनीतिक संगठन। राजनीतिक शक्ति तक पहुंच के बिना सामाजिक परिवर्तन अपने तार्किक निष्कर्ष तक नहीं पहुंचा जा सकता। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में राजनीतिक तत्वों का समावेश भारत में दलित सशक्तिकरण की प्रक्रिया के लिए अंबेडकर का सबसे अनूठा योगदान है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को सही राह पर बनाए रखने के लिए, वो आश्वस्त थे कि ऐसे परिवर्तन का नेतृत्व की बागडोर केवल दलितों के हाथों में होनी चाहिए।[8]

छठी, उन्होंने दलितों के आंतरिक परिवर्तन, आर्थिक परिवर्तन के लिए राज्य समाजवाद, राजनीतिक परिवर्तनों के लिए राजनीतिक समूहों के गठन और दलित समुदाय के सांस्कृतिक

पुनरूद्धार के लिए बौद्ध धर्म को अपनाने के लिए उनके बीच आत्मसम्मान और शिक्षा की हिमायत की। उनके अनुसार, बौद्ध धर्म समानता, स्वतंत्रता और बंधुता के तीन महत्वपूर्ण सिद्धांतों को सम्मिलित करता है। मार्क्सवाद की तरह यह एक सिद्धांत (स्वतंत्रता) की कीमत पर दूसरे सिद्धांत (समानता) को प्राप्त नहीं करता है, बल्कि यह उनके बीच पूर्ण सामंजस्य स्थापित करता है। वो इस नतीजे पर पहुंचे थे कि हिन्दू धर्म के प्रति बौद्ध प्रतिरोध क्रांतिकारी स्वभाव का था, जबकि हिन्दू धर्म की प्रतिक्रिया की प्रकृति क्रांति विरोधी थी। अछूत बौद्ध मुक्ति के संवाहक हैं। उन्होंने अपनी लोकप्रिय किताब 'द बुद्ध ऐंड हिज धर्म' में बौद्ध धर्म की प्रकृति पर गहन विश्लेषण किया था।[9]

दलित पहचान की जागरूकता और चेतना पैदा करने के लिए, उन्होंने दलितों की शिक्षा और आत्मसम्मान पर उचित जोर दिया। वो ब्रिटिश सरकार के आलोचक थे, क्योंकि वह दलितों की शिक्षा के लिए उपयुक्त अवसर सुनिश्चित नहीं कर सकी थी। शूद्रों की उत्पत्ति और अस्पृश्यता की उनकी व्याख्या दलितों के बीच आत्मसम्मान की भावना उत्पन्न करने में बहुत सफल है। यह व्याख्या उनकी दो किताबों– 'हू आर शूद्राज?' (1947) और 'द अनटचेबिलिटी' (1948) में पाई गई है। बौद्ध धर्म अपनाने की उनकी हिमायत का मुख्य रूप से मतलब था दलितों के आत्मसम्मान को स्थापित करना। अछूतों के धर्म–परिवर्तन अंबेडकर द्वारा 1927 में पहला उल्लेख किया गया था। महाड सम्मेलन के दौरान उन्होंने वास्तव में घोशित कर दिया था कि ''हम समाज में समान अधिकार चाहते हैं। जहां तक संभव हो सकेगा हम उन्हें हिन्दू धर्म के दायरे में रह कर या फिर, अगर जरूरत पड़ी तो इस निरर्थक हिंदू पहचान को ठोकर मार कर हासिल करेंगे और यदि हिन्दू धर्म का त्याग करना अनिवार्य हो जाता है तो हमें मंदिरों के बारे में चिंता करने की कोई जरूरत नहीं होगी''। उन्होंने 6 दिसम्बर 1956 को अपनी मृत्यु से चंद हफ्तों पहले ही अक्टूबर 1956 में अपना धर्म परिवर्तन कर लिया था। बौद्ध धर्म अंबेडकर के लिए सर्वोत्तम संभावित विकल्प था, क्योंकि यह एक समतावादी धर्म था जिसका जन्म भारत में हुआ और यह किसी बाहर वाले की देन नहीं था।[10]

उन्होंने दलितों को जागरूक करने के लिए अपने विचारों को प्रसारित करने के लिए 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत' और 'जनता' जैसे अखबार शुरू किए। उन्होंने दलितों को अपने पारंपरिक और अपमानित करने वाले कामकाज को छोड़ने और गांवों का परित्याग के लिए प्रेरित किया, क्योंकि वे गांव 'स्थानीयता की हौदी, अज्ञानता, संकीर्णता और सांप्रदायिकता का अड्डा थे।' यहां, भारत की राजनीतिक संरचना में गांव के स्थान पर अंबेडकर और गांधी दोनों के ही विचार भिन्न थे। गांधी ने ग्राम स्वराज का समर्थन किया जो उनके प्रस्तावित राजनीतिक ढांचे में केंद्रीय स्थान लेता है। जबकि गांव पर अंबेडकर के विचार उस समय भारतीय गांवों में प्रचलित वास्तविक हालात पर आधारित थे। गांधी के विचार उन्नत ग्रामीण जीवन और भारत के भावी राजनीतिक ढांचे में उसके स्थान पर आधारित थे। दोनों व्यावहारिक योद्धा के रूप में अंबेडकर और उभरते भारत के महान स्वप्नदर्शी के रूप में गांधी। इसी तरह, दलितों की लामबंदी के लिए, उन्होने 1926 में महाड टैंक सत्याग्रह और 1930 में मंदिर प्रवेश आंदोलन जैसे कई सामाजिक

संघर्ष आयोजित किए। इसी उद्देश्य के साथ उन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा और 1930 में मंदिर प्रवेश आंदोलन जैसे कई सामाजिक संघर्ष आयोजित किए। इसी उद्देश्य के साथ उन्होंने बहिष्कृत हितकारिणी सभा और 1930 में अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ जैसे कुछ सामाजिक संगठनों की स्थापना की। अंततः इन प्रयासों का नतीजा यह रहा कि दलितों की सामाजिक लामबंदी हुई और सामाजिक न्याय के एजेंडे को मजबूती मिली। उनका असली संदेश था कि आत्मसहायता ही सर्वोत्तम सहायता है। उन्होंने दलितों को यह भी बिल्कुल साफ किया कि यह सिर्फ और सिर्फ कड़ा और अनवरत संघर्ष होता है जिससे व्यक्ति ताकत, विश्वास और पहचान प्राप्त करता है। उन्होंने दलितों को प्रेरित किया कि 'तुम अपने खुद के पैरों पर खड़े होकर अपने अधिकारों के लिए जितनी अच्छी तरह लड़ सकते हो लड़ो। तुम्हे संघर्ष से ही शक्ति और ख्याति प्राप्त होगी।'[11]

अंबेडकर भारत में दलित सशक्तिकरण की प्रक्रिया शुरू करने वाले पहले व्यक्ति नहीं थे, और न ही वो उसकी संपूर्णता सुनिश्चित करने वाले आखिरी व्यक्ति थे। हालांकि, उनके दलित मिशन की दो अलग–अलग विशेषताएं हैं, जो कि समकालीन भारत में सामाजिक न्याय के अन्य हिमायतियों द्वारा साझा नहीं की गई हैं। पहली, इस क्षेत्र में उनका खरा योगदान था दलित सशक्तिकरण की दिशा को सही रास्ते पर लाना और उसे आगे बढ़ाना तथा इसे एक अलग राजनीतिक चरित्र प्रदान करना, जो कि सशक्तिकरण के विचार का मूल है। इस राजनीतिक मूल के बिना, दलित सशक्तिकरण का विचार वास्तविक महत्व और, भावना से दूर होगा। दूसरी, अपने समय से पहले के और बाद के अन्य दलित समाज सुधारकों के विपरीत, उन्होंने अपने मिशन को एक ठोस और व्यावहारिक ढांचे के साथ आगे बढ़ाया। इसमें उनका कार्यवाही का ढांचा भी समान रूप से मजबूत था। वो न केवल दलित सशक्तिकरण के महान सिद्धांतकार थे बल्कि दलित हित के अधीर कार्यकर्ता भी थे। इस मायने में वो औरों से काफी अलग और काफी आगे थे। उनका जीवन और मिशन सिद्धांत और कार्यवाही का एक उत्तम और अनूठा मिश्रण था। उनके विचार प्रभावशाली प्रकाश हैं। यहां तक कि उनके विचार आज भी दलित सशक्तिकरण की जारी प्रक्रिया को बनाए रखते हैं। उनकी वैचारिक नींव के बिना, भारत में समकालीन दलित सशक्तिकरण की प्रक्रिया का अंत हो जाएगा और वो अपनी पहचान, दिशा और भावना को खो देगी।

संदर्भ ग्रंथ

1. Bharti, A.K., Dr. Ambedkar's vision of Dalit Upliftment, 2001
2. George, Goldy, M. Salam Bhimraol Dr. Bhimrao Ramji Ambedkar & The Dalit Movement in India: A Reflectin, 2010.
3. Kumar, P. Keshav, Political Philosophy of B.R. Ambedkar: A Critical Understanding. Untouchable Spring, 2010.
4. Mendelsohn, Oliver and Manka Vicziany, The untouchables: subordination, poverty, and the state in modern India, Cambridge University Press, 1998.

5. Omvedt Gail, Ambedkar Confronts Gandhi, 2012.
6. Reddy C. Sheela, Ambedkar's Word and Mission Mainstream, 12 April, 2008.
7. World Bank, 'What is Empowerment'? 2002.
8. Yadav, Yogendra, Ambedkar at Lohia: Dialogue on Caste, 2012.
9. परीक्षा मंथन, निबन्ध श्रंष्खला, भाग–5, 2013–2014
10. परीक्षा मंथन, सितम्बर 2011
11. परीक्षा मंथन, नवम्बर, 2012